अप्रेल १९९२ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

पियो गरू भावनीयो, वत्ता च वचनक्खमो।
गम्भीरं च कथं कत्ता, नो चट्ठाने नियोजये॥

– विसुद्धिमग्ग ३-६१.

जो कल्याणमित्र है, वह – प्रिय, गौरवशाली, आदरणीय, सुवक्ता और वचनसहिष्णु होता है; गंभीर बातों को बतानेवाला और बुरे कामों में नहीं लगनेवाला होता है।

ऐसे थे गुरुदेव !

अद्भुत प्रशिक्षण

"गोयन्का, आओ तुम्हें चलना सिखाएं!" गुरुदेव की करुणाभरी पर चौंका देनेवाली वाणी। मैं कोई घुटनों चलता शिशु तो था नहीं। गुरुदेव चलना क्या सिखायेंगे भला! पर सचमुच चलना ही सिखाया। विपश्यी योगी कैसे चले, यह सिखाया।

मैं महीने के लंबे शिविर में बैठा था। विपश्यना की जो गहराइयां दस-दस दिनों के शिविरों में अनुभूत हुई थीं, वे अब छिछली लगने लगीं। सचमुच धर्म कितना गहन गंभीर है! जिस भंग ज्ञान की अवस्था प्रथम दस दिवसीय शिविर में प्राप्त हो गयी, वह आगे जाकर सहज बन गयी। परन्तु दस दिन की लंबी आनापान के पश्चात् जब विपश्यना आरंभ की तो जो भंग अवस्था आयी, वह अपूर्व थी। शरीर का ठोसपना पहले ही समाप्त हो चुका था, पर अब बात कुछ और ही थी। धारा-प्रवाह की अनुभूति जो कि पहले बड़ी सूक्ष्म लगती थी, अब अधिक सूक्ष्मता प्राप्त कर लेने पर वह स्थूल लगने लगी। आखिर स्थूल-सूक्ष्म तो सापेक्ष ही हैं। एक की अपेक्षा सूक्ष्म तो दूसरे की अपेक्षा स्थूल। पूज्य गुरुदेव ने वास्तविकता देखी और समयानुसार चलना सिखाया। बड़ा अद्भुत अनुभव था।

चलते हुए शरीर में कहीं-कहीं संवेदना की अनुभूति करते हुए अनित्य बोध पुष्ट करने का काम तो पहले भी होता था, परन्तु अब जिन गहराइयों में सत्य-दर्शन करते हुए चलना सिखाया गया, वह तो सचमुच ही बड़ा अद्भुत था। शरीर की मृण्मय अवस्था किन गहराइयों से चिन्मय हो गयी। समग्र शरीर केवल परमाणुओं का पुंज, जिसमें त्वरित गति से व्यय भंग होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। मन हृदयवत्थु पर टिका हुआ हर कदम के साथ समग्र शरीर-पिंड के विघटन का अनुभव कर रहा था। मानो नदी तट का कोई रेतीला कगार नदी के तेज बहाव से कट कर भरभराकर गिर पड़ा हो। सभी रेतीले कण अलग-अलग हो गए हों। मानो तेज आंधी से रेगिस्तानी बालू का टीला उड़ गया हो। एक-एक बालू-कण बिखर गया हो। चलते हुए समग्र शरीर की विपश्यना इतनी गंभीर हो सकती है, इसकी पहले कल्पना भी नहीं थी। क्या खूब चलना सिखाया गुरुदेव ने!

ऐसे ही एक दिन भोजन करना सिखाया। विपश्यना की वैसी ही एक गंभीर भंग अवस्था में कहा, –"चलो आज तुम्हें खाना सिखाएं!"

इस बार चौंका नहीं, पर किसी गंभीर अनुभूति की उत्सुकता लिए उनके साथ भोजनशाला पहुँचा। हमेशा आश्रम में पूज्य गुरुदेव के साथ ही बैठकर भोजन किया करता था। आज भी उनकी भोजन की चौकी के सामने ही अभिमुख होकर बैठा। थाली में भोजन परोस दिया गया। गुरुजी ने एक खाली प्याला मँगवाया और कहा कि रोटियों के छोटे-छोटे टुकड़े करके इसमें डाल दो। ऐसा हो चुकने पर अब इस थाली में साग, सब्जी, दाल, दही, भात इत्यादि सूखा या गीला, ठोस या तरल, खट्टा या मीठा, नमकीन या कसैला जो कुछ है उसे इस प्याले में डालकर मिला लो। सुना था कई भिक्षु इसी प्रकार मिलाकर भोजन करते हैं। पर विपश्यी भोजन की बात तो और भी निराली थी। कटोरे में भोजन को पूरी तरह मिला लेने के पश्चात् गुरुजी ने कहा, "अब आंख बंद करके ध्यान करो।" गंभीर भंग ज्ञान की साधना से उठकर आया था। भंग ज्ञान में से भोजनशाला तक चलकर आया था। अतः आंख बंदकर यथाभूत सच्चाई का ध्यान करते ही देखा कि सारा शरीर नन्हें-नन्हें परमाणुओं की भंग-स्वभावी तीव्र भुरभुराहट की अनुभूति से भर उठा।

कुछ देर बाद गुरुदेव ने कहा, "आंखें बंद रखो और सामने रखे प्याले में से एक कौर भोजन उठाओ!" भोजन को छूते ही लगा जैसे भोजन के परमाणुओं में बिजली का करंट हो, जो अँगुलियों के परमाणुओं के करंट से छू गया। तीव्र झनझनाहट हुई। उनके आदेशानुसार भोजन का ग्रास मुँह की ओर ले गया। जैसे ही होठों को लगा, फिर तीव्र झनझनाहट की अनुभूति हुई। अब चबाते समय होठों पर, मसूड़ों पर, जीभ पर, मुँह की भीतरी दीवारों पर जहां-जहां भोजन का स्पर्श होता, वहीं-वहीं तीव्र झनझनाहट। भोजन का स्वाद गौण हो गया। यह झनझनाहट का अनित्यबोध प्रमुख हो गया। निगलने लगा तो वैसे ही गले में, और गले से उतरते हुए आहार-नलिका में, वैसी ही अनुभूति होती रही। यों एक-एक ग्रास, एक-एक ग्रास खाते हुए भोजन पूरा हुआ तो गुरुजी ने विश्राम करने के लिए कहा। उसी भंग अवस्था में चलते हुए अपने निवास पर आया और बिस्तर पर लेट गया। आंखें बंद थीं, मन भीतर था। भोजन के परमाणु-पुंज का शरीर के परमाणु-पुंज के साथ होते हुए आघात-प्रतिघात का विचित्र अनुभव था। पेट की एक-एक हलन-चलन बहुत साफ-साफ महसूस हो रही थी। इसके साथ ढेर के ढेर परमाणुओं की बुदबुदाहट का भंग ज्ञान। ऐसी अद्भुत विपश्यी भोजन की अनुभूति से निहाल हो उठा।

इसके पूर्व भोजन के प्रति गहरी आसक्ति रहा करती थी। विशेषकर मिर्च-मसालों वाले चटपटे और तले हुए पदार्थों के प्रति। इस दीर्घ शिविर के बाद वह आसक्ति अनायास ही टूट गयी। अब सादे सात्विक भोजन की ओर ही अभिरुचि बढ़ने लगी। पहले तो मानो खाने के लिए जीता था और अब जीने के लिए खाना आ गया। शरीर को सबल-स्वस्थ रखकर अध्यात्म के क्षेत्र में उसका उपयोग करना है। इस निमित्त शुद्ध सात्विक आहार की

आवश्यकता है, अतः ग्रहण करना है, पर जीभ के स्वाद के लिए नहीं।

भला सिखाया भोजन करना गुरुदेव ने!

अद्भुत परीक्षण

विपश्यना साधना की गहराईयों में उतरनेवाला विभिन्न संवेदनाओं के प्रति संवेदनशील होता चला जाता है। पहले तो अपने शरीर की सीमाओं के भीतर ही, परन्तु आगे चल कर भीतर के ध्यान के बाद बाहर के किसी सजीव-निर्जीव व्यक्ति, वस्तु के प्रति; यहां तक कि वातावरण की तरंगों के प्रति भी संवेदनशील होने लगता है।

किसी एक दस दिवस के शिविर में हम दोनों सम्मिलित हुए। दसवें दिन सायं सात बजे के आस-पास शिविर समापन हुआ। घर से बच्चे हमें लेने आए। कृतज्ञता के भावों से अभिभूत होकर पूज्य गुरुदेव के चरणों में पंचांग नमनकर उनकी मंगल मैत्री लेकर जाने लगे तो उन्होंने बच्चों से पूछा – "क्यों रे, आज के खेल की टिकटें मिलीं?"

बच्चों ने कहा, "हां"।

– "तुम्हारे माता-पिता के लिए भी टिकटें लीं?"

बच्चों ने फिर स्वीकृतिमय उत्तर दिया। गुरुदेव ने खुश होते हुए कहा, – "जल्दी जाओ, खेल शुरू होने का समय हो रहा है।"

कार में बैठते हुए हमने बच्चों से पूछा, "कौनसे खेल की बात हो रही थी?" उन्होंने कहा, "हॉलीडे ऑन आइस।" उन दिनों रंगून में, अमेरिका से आई एक नृत्य प्रदर्शनी कंपनी के खेल-तमाशे चल रहे थे। खुले मैदान में बने एक मंच पर बर्फ जमाकर यह नृत्य मंडली उस पर स्केटिंग का खेल दिखाती थी। जिन गरम देशों में कभी बर्फ नहीं गिरती, वहां इस प्रकार की स्केटिंग लोगों के लिए नवीनता का आकर्षण लेकर आयी थी। बर्मा में यह खेल पहली बार आया था। अतः दर्शकों की भीड़ थी। बच्चों ने अग्रिम पंक्ति की टिकटें पहले से रिजर्व करवा ली थीं। मैं जानता था कि वहां कैसा गंदा वातावरण होगा। अतः पूछ बैठा कि हमारी टिकटें क्यों लाए? तुम्हें देखना था तो देख आते। परन्तु यह सुनकर विस्मय-चकित रह गया कि इसका आदेश स्वयं गुरुजी ने दिया है। विश्वास नहीं हो रहा था, गुरुजी ऐसा आदेश क्यों देते? सचमुच आश्रम से निकलते-निकलते उन्होंने बच्चों से पूछा भी तो था। पर ऐसा क्यों?

दस दिवसीय गंभीर साधना द्वारा तपोभूमि के निर्मल वातावरण में तपते हुए अन्तर्तम की प्रगाढ़ प्रशांति की अनुभूति लिए सीधे घर जाते तो उसका असर घर के वातावरण पर छा जाता। सब का कल्याण होता। गुरुदेव को यह क्या सूझी? ऐसे परम पावन ब्राह्मी वातावरण से उस घोर पातकी नारकीय वातावरण की ओर क्यों ढकेला भला? कुछ समझ में नहीं आ रहा था। पर करते क्या! घर लौटने की बजाय उस बर्फीले क्रीड़ांगन की ओर चले। सारी कुर्सियां दर्शकों से खचाखच भरी थीं। लगा बरफ पर स्केटिंग देखने तो कम, परन्तु उन हेम-केशीय पश्चिमी नृत्यांगनाओं की अर्धनग्न देह-यष्टि देखने के लिए अधिक लोग आए थे। इसीलिए खुले मैदान में भी वातावरण घुटनभरा था। हम जिन कुर्सियों पर बैठे थे, वह ठंडे बर्फीले मंच से सटी हुई थीं, फिर भी गर्मी की तपन से जी घबरा रहा था। सारा वातावरण वासना की गंध से बुरी तरह बोझिल था।

युवावस्था का एक दौर था जबकि रंगमंच के प्रति बड़ा आकर्षण रहा करता था। सामान्य आकर्षण ही नहीं, गहन आसक्ति थी। विपश्यना के शिविर-पर-शिविर लेते हुए किसी शिविर में एक अनुभूति इतनी गहरी हुई कि यह आसक्ति सांप की पुरानी केचुली की तरह सहजभाव से उतर गयी। आकर्षण विकर्षण में बदल गया। निर्वेद में बदल गया। गुरुदेव इस बात को खूब जानते हैं। फिर यहां क्यों भेजा भला? आश्रम से सीधे घर जाते, अपनी तपस्या का पुण्य सब को वितरण करते! कितनी प्रसन्नता होती!

ऐसे चिंतन में मन डुबकियां लगा रहा था, इतने में तालियों की गड़गड़ाहट के बीच अधनंगी नर्तकियों की एक लम्बी कतार बर्फ जमे मंच पर स्केटिंग करती हुई सामने आयी। दर्शकों के मन आह्लादित थे। पर मैंने देखा कि इस घुटनभरे वातावरण में कामवासना की गंध और तीव्र हो उठी। आंखें जलने लगीं, जी मतलाने लगा। कहीं वहीं उल्टी न हो जाय। बगल में बैठी धर्मपत्नी की ओर देखा तो उसका भी बुरा हाल। कहीं बेहोश होकर गिर न पड़े। जिस प्रथम पंक्ति में हम बैठे थे, उसमें समाज के अनेक प्रतिष्ठित लोग बैठे थे, जिनमें से कितने ही परिचित थे। हमारी वजह से कहीं कोई बेतुका सीन न खड़ा हो जाय, लोगों का आमोद-प्रमोद किरकिरा न हो जाय। अतः दोनों शीघ्रतापूर्वक बाहर निकल आए। बच्चे कुछ न समझ पाए। वे भी हमारे साथ-साथ बाहर निकल आए। शीघ्रतापूर्वक कार से घर पहुँचकर चैन की सांस ली। दोनों के दोनों ही अत्यंत अप्रिय अनुभूतियों में से गुजरे, जिसकी याद भुलाए नहीं भूलती। देर तक भीतर ही भीतर अनित्य बोध पुष्ट होता रहा। उन नर्तकियों और दर्शकों के प्रति मैत्रीभाव जागता रहा।

दूसरे दिन सायंकालसदा की भांति आश्रम पहुँचे। गुरुदेव को नमस्कार कर बैठते ही उन्होंने पूछा, "कल का अनुभव कैसा रहा?"

हमने आपबीती कह सुनाई। गुरुजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "मैंने इसीलिए तुम दोनों को भेजा था। मुझे यह देखना था कि तुम दोनों बाहरी वातावरण के प्रति कितने संवेदनशील हो गए हो! यहां की तीव्र पावन तरंगों से निकलकर वहां की तीव्र दूषित तरंगों में जाते ही दोनों का अन्तर अधिक स्पष्ट मालूम होता है और तब उन अकुशल तरंगों के प्रति जागा निर्वेद अधिक बलशाली होता है। उसका आकर्षण जड़ों से निकल जाता है।

प्रसन्न मुद्रा में उन्होंने कहा, अच्छा हुआ, दोनों सफल हुए। साधु! साधु!! साधु!!!"

हमने भी मन ही मन साधुवाद दिया। धन्य हैं ऐसे अद्भुत गुरुदेव!

ऐसी ही एक और घटना –

किसी एक शिविर में मैं अकेला ही सम्मिलित हुआ था। पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण धर्मपत्नी घर पर ही रही। परन्तु शिविर समापन के दिन सायंकाल मुझे लेने आयी। कृतज्ञतापूर्ण वंदना के पश्चात् जाने लगे तो गुरुदेव ने आदेश दिया – "सीधे घर मत जाना। पहले श्वेडगोन पगोड़ा जाकर अमुक मूर्ति को नमस्कार करना। तब घर जाना।"

अजीब सा लगा। ऐसा आदेश पहले कभी नहीं दिया था।

फिर भी यह समझकर चले कि उस दिन वाले नृत्य-क्रीड़ांगन देखने जाने से तो यह कहीं अच्छा ही है।

श्वेडगोन पगोड़ा के चारों ओर फैले विशाल प्रांगण पर अनेक मन्दिर बने हैं, जिनमें सैकड़ो बुद्धमूर्तियां है। जिस किसी में श्रद्धासार्मथ्य जागा, उसी ने खाली जगह देख कर कोई मूर्ति स्थापित कर दी। सदियों से ऐसा होता रहा। अतः छोटी-बड़ी अनेक मूर्तियां हैं वहां।

गुरुदेव ने बड़े विस्तार से समझाया कि हम कौनसी सीढ़ियों से चढ़कर प्रांगण के किस भाग में, किस मंडप में, किस दिशाभिमुख, कौन सी मूर्ति को नमस्कार कर घर लौटें।

श्वेडगोन के विशाल चैत्य के तले भगवान बुद्ध की केश-धातु प्रतिष्ठित है। अतः सारे वातावरण की तरंगें स्वभावतः सुखद हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। पगोडा के चारों ओर स्थित विशाल परिक्रमा प्रांगण से लगभग पन्द्रह फुट ऊंचा एक खुली छतनुमा चबूतरा है जिस पर से पगोडा का निर्माण आरंभ हुआ है। इस खुली छत पर जाने की सीढ़ियों पर ताला लगा रहता है। परन्तु ट्रस्टियों से घनिष्टता होने के कारण कुछ अन्य साधकों की भांति मेरे लिए भी यह ताला यदा-कदा खोल दिया जाता था। बहुत बार सायंकाल उस छत के पवित्र वातावरण में एकांत साधना का रसास्वादन कर चुका था। अतः गंभीर साधना के बाद श्वेडगोन जाकर नमन करना मानस को बुरा नहीं लगा।

परिक्रमा प्रांगण पर पहुँचकर जो स्थान गुरुजी ने बताया और जिस मूर्ति का हवाला दिया था, उसे ढूंढ़कर वहीं पहुँचे। बड़ी श्रद्धापूर्वक नमस्कार किया। परन्तु यह क्या? पहले ही नमस्कार में यों लगा जैसे रीढ़ की हड्डी में किसी ने पिघला हुआ शीशा ढाल दिया हो। पीठ और कमर इस कदर अकड़ गयी कि झुका हुआ सिर उठाना मुश्किल हो गया। जैसे-तैसे बहुत बलपूर्वक तीन बार नमन करके घर लौटा। देखा धर्मपत्नी का भी बुरा हाल था। पर उसका तो सुबह होते-होते ठीक हो गया, मेरे लिए रात जिस पीड़ा में बीती, दिन भी उसी प्रकार अकड़नभरी पीड़ा में ही बीता। यद्यपि अनित्य बोध के साथ समता बनाए रखने में सतत प्रयत्नशील बना रहा।

उस दिन सायंकाल जब गुरुजी की सेवा में पहुँचे तो उन्हें झुककर प्रणाम करना कठिन हो गया, फिर भी मनोबल से तीन बार नमन किया।

गुरुजी मेरी ओर देखकर जोर से हँसे और पूछा, "क्या हुआ रे!"

मैं चुप रहा। गुरुजी ने फिर पूछा! मैं फिर चुप।

बर्फ पर नंगे नाच की एक झलक मात्र देखकर जो बुरा हाल हुआ था, उसका व्योरा तो बड़ी जल्दी कह सुनाया था, परन्तु अब तो बड़ा असमंजस था। गुरुजी जन्मतः बौद्ध और सभी बौद्धों की भांति उनकी भी श्वेडगोन के प्रति अपार श्रद्धा भक्ति। कैसे कहूं कि वहां के वायुमंडल से पीड़ित हुआ। उन्हें कितना बुरा लगेगा। इसलिए बोल न सका। अतः मौन रहने के सिवाय कोई चारा नहीं था।

चनक पड़ जाने से कमर जिस प्रकार अकड़ जाती है, वैसी अकड़नभरी अवस्था गुरुजी देख रहे थे। उन्होंने हँसकर प्रोत्साहन देते हुए पूछा –"जो भी अनुभव हुआ हो, वही बता। संकोचन कर।"

मैंने कहा –"गुरुदेव मेरी कमर अकड़ गयी। हो सकता है कोई मोच आ गयी होगी।"

–"नहीं रे, कोई मोच-वोच नहीं। यह वहां झुकने का परिणाम है। साधु! साधु!! साधु!!! शिविर समाप्त होते ही मैंने तुझे वहां इसीलिए भेजा था कि तू वातावरण की तरंगों के प्रति कितना संवेदनशील हुआ है, यह जांचूं। 'हॉलीडे ऑन आइस' के खेल में हो सकता है कि तेरा मानस पूर्वाग्रह से प्रभावित होकर व्याकुल हुआ हो। परन्तु यहां पूर्वाग्रह हो तो भी सकारात्मक ही होगा। अतः तुम्हारी संवेदनशीलता की सही परीक्षा हो गयी।"

–"परन्तु गुरुदेव! श्वेडगोन की खुली छत पर मैं बहुत बार ध्यान करने बैठा हूं। बहुत सुखद और सूक्ष्मतम अनुभूतियां हुई हैं। मंदिर के अनेक भागों में भी अनेक बार गया हूं, पर ऐसा अप्रिय अनुभव तो कभी नहीं हुआ। इस बार ऐसा क्यों हुआ?"

शंका का समाधान करते हुए उन्होंने समझाया। अच्छे से अच्छे वातावरण वाले क्षेत्र में भी कोई स्थान ऐसा हो सकता है, जहां बार-बार मैली तरंगों का प्रजनन होते रहने के कारण प्रदूषण बढ़ जाय।

–"क्या उस मूर्ति के सामने एक पत्थर रखा हुआ था?" उन्होंने पूछा। मुझे याद आया। हां नदी के बहाव में घिसा हुआसा ८-१० इंच के व्यास का एक अनगढ़ पत्थर वहां पड़ा था।

–"हां, भगवान बुद्ध की मूर्ति को नमन करते हुए मैंने इसी पत्थर पर अपना माथा टेका था।"

गुरुजी ने हँसते हुए बताया, इस स्थान पर लोग अपनी-अपनी लौकीय मनोकामनाएं पूरी करने के लिए याचना करने जाते हैं। अपना मनोरथ पूरा करने के लिए इस पत्थर को उठाते हैं। यदि वह हल्का लगे तो मनोरथ सिद्ध होगा, भारी लगे तो नहीं। ऐसी लोक मान्यता है। ऐसे स्थान का सारा वातावरण रागमयी तरंगें प्रजनन करनेवाला है। जो आए, वह तृष्णा ही जगाऐगा। राग ही जगाएगा। जन्म-जन्मांतरों के भव-संस्कारों के बोझ को उतारता हुआ वीतरागता की गहरी विपश्यना साधना करके इतना हल्कापन महसूस करके गया हुआ व्यक्ति उस वातावरण में से गुजरेगा तो उसे ऐसा भारीपन लगेगा ही। सर्वथा विपरीत स्वभाववाली तरंगे। कहां वीतरागता की पावन तरंगे और कहां रागमयी दूषित तरंगें। तुम पीड़ित हुए परन्तु अनित्य बोधके आधार पर समता बनाए रखने की कोशिश करते रहे। चलो, तुम्हारा परीक्षण सफल हुआ। गुरुदेव बहुत प्रसन्न थे। सचमुच धन्य हैं! ऐसे अद्भुत गुरुदेव और धन्य हैं! उनके ऐसे अद्भुत प्रशिक्षण! परीक्षण! धन्य हुए हम जो ऐसे सन्त की संगत से कल्याणलाभी हुए।

धर्मपुत्र

स. ना. गो.